संस्कार ग्रहण करने के मौके कम होते जा रहे हैं। बच्चों के लिए अच्छे मूल्य सीखने का दूसरा स्रोत स्कूल हो सकता है। लेकिन वहाँ भी स्थिति बिगड़ जाती है। इसके पीछे एक कारण तो बच्चों के सामने शिक्षकों का अक्सर खराब उदाहरण पेश करना है, और दूसरा है बहु–सांस्कृतिक एवं बहु–धार्मिक समाज में औपचारिक तौर पर नैतिकता और मूल्यों की बातें सिखाने के साथ जुड़ी समस्याएँ। आप किसकी नैतिकता और किसके मूल्य सिखाते हैं? और चूँकि ऐसे प्रश्नों की जड़ें पारम्परिक रूप से धार्मिक उपदेशों में रहीं हैं। किसी के भी पास इनके सबके द्वारा स्वीकार्य उत्तर नहीं रहे हैं, और इसलिए हम अन्ततः कोई भी उत्तर नहीं सिखा पाए हैं। मेरा मानना है कि समय आ गया है अब ऐसे उपदेशों को धर्म के बाहर तलाशा जाए। साथ ही इस तरह के विषयों को स्कूल में पढ़ाने के लिए कारण और तर्क से बना एक आधार विकसित किया जाए। आशा है कि ऐसे पाठ्यक्रम पढ़ाने से और ऐसे विचार–विमर्शों से शिक्षक और जनसाधारण, दोनों में ही बदलाव आएगा जिससे पेशे और उत्तरदायित्व के प्रति प्रतिबद्धता बढ़ेगी, और इसी की सबसे ज़्यादा ज़रूरत है।

संक्षेप में, इस छोटे से लेख में हमारा तर्क यह रहा है कि स्कूलों में अच्छी शिक्षा व्यवस्था होने के लिए अच्छे और प्रतिबद्ध शिक्षकों का होना अत्यावश्यक है। पाठ्यक्रम और पाठ्यपुस्तकों के विकास में शिक्षकों की भूमिका बढ़ना चाहिए और इसके लिए इन प्रक्रियाओं का विकेन्द्रीकरण ज़रूरी है। हमें ज़्यादा गुणी लोगों को इस व्यवसाय की ओर आकर्षित करना चाहिए और इसके लिए हमें न केवल तनख्वाहें बढ़ाना चाहिए बल्कि शिक्षकों के काम करने की दशाओं और उन्हें उपलब्ध सुविधाओं में भी सुधार लाना चाहिए। पर, इस सबका भी कोई अर्थ नहीं निकलेगा जब तक हम इसके साथ शिक्षकों की जवाबदेही भी नहीं बढ़ाते जिसके लिए न केवल वैधानिक प्रक्रियाएँ ज़रूरी होंगी, बल्कि हमारी स्कूली व्यवस्था द्वारा शिक्षकों और छात्रों, दोनों में ही मूल्यों का उचित बोध भी जगाना पड़ेगा।

विजय शंकर वर्मा दिल्ली विश्वविद्यालय में डीन (योजना) व भौतिक शास्त्र के प्राध्यापक रहे हैं। सेवानिवृति के बाद वे वर्तमान में अम्बेडकर विश्वविद्यालय, दिल्ली में सलाहकार (योजना) हैं। उन्होंने होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम में दिल्ली विश्वविद्यालय के शैक्षिक समूह की भागीदारी का समन्वयन किया है। उनसे इस पते पर सम्पर्क किया जा सकता है: varma2@gmail.com

---

विज्ञान का इतिहास

समय के झरोखे से विज्ञान की यात्रा

नन्दिता नारायणसामी



विज्ञान के इतिहास के बारे में सोचते हुए, जो पहली चीज़ मेरे दिमाग में उभरी, वह थी बच्चों के एक स्वास्थ्यवर्धक पेय पदार्थ का विज्ञापन। विज्ञापन में कहा गया है कि उस उत्पाद में प्रकृति और विज्ञान एक साथ मौजूद हैं, और इसलिए वह पोषक तत्वों के पूरक के तौर पर श्रेष्ठ है! वह कम्पनी हमें यह विश्वास दिलाती है कि प्रकृति इसके जटिल पोषक तत्व प्रदान करती है और विज्ञान इसके खनिज प्रदान करता है। जाहिर तौर पर इस विज्ञापन के बारे में, यदि हम तार्किक दृष्टि से सोचें तो निष्कर्ष यह निकलता है कि खनिज प्रकृति का हिस्सा नहीं हैं। मेरी अज्ञानता को क्षमा करें। मैं अभी तक यह सोचती आई थी कि विज्ञान हमेशा से प्रकृति की कार्यप्रणाली का अध्ययन या उसकी जाँच करने का साधन रहा है। यदि हम यूरोपीय और एशियाई, दोनों साहित्यों में पीछे मुड़कर देखें, तो पाते हैं कि प्रकृति से अभिभूत होने के भाव के साथ उसकी शक्ति को समझने और उसको इस्तेमाल करने की मानव जाति की तलाश के बीच निकट सम्बन्ध काफी स्पष्ट दिखाई देता है। इस पूरे प्रसंग ने मुझे विज्ञान को लेकर हमारी समझ के बारे में आत्मविश्लेषण करने पर मजबूर कर दिया, साथ ही यह सोचने पर भी मजबूर किया कि समय के साथ यह दृष्टिकोण कैसे बदला है।

विज्ञान को अँग्रेज़ी में साइन्स कहते हैं। साइन्स लैटिन शब्द 'साइंशिया' से निकला है जिसका अर्थ है ज्ञान। भौतिक चीज़ें कैसे काम करती हैं, विज्ञान यह खोजने का और इसके बारे में मानवीय समझ को विकसित करने का प्रयास है। विज्ञान, वर्तमान में मौजूद दुनिया की जाँच–पड़ताल करने के लिए, पाँच इन्द्रियों के द्वारा किए गए भौतिक दुनिया के निरीक्षण से प्राप्त ज्ञान का

सम्पूर्ण संग्रह है। ऑक्सफोर्ड शब्दकोष में विज्ञान को निरीक्षण एवं प्रयोगों द्वारा किए जाने वाले भौतिक तथा प्राकृतिक विश्व के ढाँचे और व्यवहार के सर्वांग अध्ययन को समाहित करने वाली बौद्धिक व प्रायोगिक गतिविधि के रूप में परिभाषित किया गया है।

प्राचीन दुनिया के बचे हुए कई महत्वपूर्ण पुस्तकीय स्रोतों के द्वारा आधुनिक विज्ञान के ठीक-ठीक उद्भव तक पहुँच पाना सम्भव है। कई प्राचीन सभ्यताओं ने साधारण अवलोकन द्वारा व्यवस्थित ढंग से खगोलीय जानकारियाँ इकट्ठी की थीं। हालाँकि उन्हें ग्रहों व तारों के वास्तविक भौतिक ढाँचे के बारे में कोई ज्ञान नहीं था, फिर भी उनकी कई सैद्धान्तिक व्याख्यायें प्रस्तावित की गईं। कई जगह के लोगों को मानव शरीर विज्ञान के बारे में बुनियादी तथ्य ज्ञात थे, और कई सभ्यताओं में कीमिया (आलकेमी) प्रचलित थी। सुमेर (अब इराक) में ई.पू. 3500 के आसपास अपने उद्भव के समय से, मेसोपोटेमियाई लोगों ने बेहद परिपूर्ण मात्रात्मक और सांख्यकीय आँकड़ों के साथ दुनिया के कुछ अवलोकनों को दर्ज करने के प्रयास शुरू किए। पूर्व-सुकरात युग का दार्शनिक थेलेस, जिसे 'विज्ञान का पिता' कहा जाता है, पहला व्यक्ति था जिसने प्राकृतिक घटनाओं जैसे बिजली कड़कने व भूकम्पों के लिए गैर-अलौकिक व्याख्याओं की परिकल्पना की।

प्राकृतिक संसार की ऐसी अनुभव पर आधारित जाँच-पड़तालों का विवरण, प्राचीन यूनान सहित (उदाहरण के लिए थेलेस, अरस्तु और अन्य लोगों के द्वारा) सभी प्राचीन सभ्यताओं में मिलता है, वहीं वैज्ञानिक तरीकों के इस्तेमाल किए जाने के लिखित दस्तावेज मध्यकाल में प्रकट होते हैं। प्राचीन भारत धातुविज्ञान का प्रारम्भिक प्रणेता था, जिसका सबूत दिल्ली का पिटवां लोहे का स्तम्भ है। प्राचीन भारतीयों को लोहे के निर्माण और उन घटकों को तैयार करने में महारथ हासिल थी, जिन्हें लोहे के साथ गलाकर मिलाने से नरम लोहा प्राप्त किया जाता है। ऐसे लोहे को आमतौर पर भारतीय इस्पात कहा जाता है। उनके पास ऐसे कारखाने थे जहाँ संसार की सबसे प्रसिद्ध तलवारें बनाई जाती थीं। प्राचीन चीन चार महान आविष्कारों की जन्मस्थली था: दिशासूचक यंत्र, बारूद, कागज़ और छपाई।

फिर भी, आज के विज्ञान की शुरुआत प्रारम्भिक आधुनिक काल के उस दौर से मानी जाती है जिसे वैज्ञानिक क्रान्ति के नाम से जाना जाता है, और जो यूरोप में 16वीं तथा 17वीं शताब्दी में घटित हुई। वैज्ञानिक शब्द भी अपेक्षाकृत हाल ही का है - यह सबसे पहले विलियम व्हेवैल के द्वारा 19वीं शताब्दी में गढ़ा गया। उससे पहले प्रकृति की खोजबीन करने वाले लोग अपने को प्राकृतिक दार्शनिक कहते थे।

वैज्ञानिक पद्धतियों को आधुनिक विज्ञान में इतना आधारभूत माना जाता है कि कुछ लोग (खासकर विज्ञान के दार्शनिक और कार्यरत वैज्ञानिक) प्रकृति सम्बन्धी पुरानी जाँच-पड़तालों को पूर्व-वैज्ञानिक मानते हैं। हालाँकि विज्ञान के इतिहासकारों ने पारम्परिक रूप से विज्ञान को इतने व्यापक ढंग से पारिभाषित किया है कि उसमें वे जाँच-पड़तालें भी आ जाती हैं।

विज्ञान की और अधिक फैली हुई आधुनिक परिभाषा में प्राकृतिक विज्ञान शाखाओं के साथ-साथ सामाजिक विज्ञान और व्यवहारवादी विज्ञान शाखाओं को भी शामिल किया जा सकता है। इसकी परिभाषा कुछ इस तरह की जा सकती है - किसी भी क्रियाकलाप का निरीक्षण, पहचान, विवरण, प्रायोगिक जाँच-पड़ताल और सैद्धान्तिक व्याख्या करना विज्ञान है। फिर भी, वर्तमान में प्रचलित अन्य परिभाषाएँ अभी भी प्राकृतिक विज्ञान की शाखाओं, जिनका भौतिक संसार के क्रियाकलापों से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है, को ही विज्ञान का सच्चा वाहक मानती हैं।

ऊपर के वृतान्त में जो एक भाव सर्वोपरि रूप से विद्यमान है, वह है प्रेक्षण पर दिया गया जोर। वैज्ञानिकों से ऐसे तटस्थ प्रेक्षक होने की उम्मीद की जाती है, जो वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग करके विभिन्न सिद्धान्तों की निर्णायक रूप से या तो पुष्टि करते हैं, या उन्हें झूठा सिद्ध करते हैं। आँकड़े एकत्रित करने में इन विशेषज्ञों की पहले से कोई धारणाएँ नहीं होना चाहिए, और उन्हें तटस्थ, वस्तुनिष्ठ प्रेक्षणों से तार्किक पद्धति के द्वारा सिद्धान्तों को निकालना चाहिए। विज्ञान की एक बड़ी शक्ति यह है कि वह स्वयं को सुधार लेता है, क्योंकि जब कोई सिद्धान्त अतर्कसंगत सिद्ध हो जाते हैं तो वैज्ञानिक उन्हें सहज ही त्याग देते हैं।

इसलिए मेरी राय में तो विज्ञान को ऐसी परियोजना की तरह देखा जाना चाहिए जिसका लक्ष्य प्राकृतिक संसार का ज्ञान प्राप्त करना है। मेरे लिए विज्ञान, जीवन जीने का ऐसा ढंग है जो विचार को प्रोत्साहित करता है और मनुष्य के अस्तित्व को प्रभावित करने वाले किसी भी पहलू के बारे में स्वस्थ पूछताछ को बढ़ावा देता है। परन्तु, विज्ञान की दार्शनिक परिभाषा होगी, कि मूल रूप से यह किसी चीज़ के बारे में प्रश्न पूछने का व्यवस्थित और अध्ययन-आधारित तरीका है। इसलिए विज्ञान समझ का ऐसा मार्ग है जो और गहरे सवालों की ओर ले जाता है।

लेकिन, आज की विज्ञान शिक्षा (खासकर भारत में) निरीक्षण और पूछताछ, दोनों को नाममात्र का ही महत्व देती है। सच तो यह है कि विद्यार्थियों में इन दोनों आवश्यक क्षमताओं को क्रमशः निरुत्साहित किया जाता है। इससे वे स्वयं सोचने में असमर्थ, यंत्रवत जीने वाले लोगों के समूह बनकर रह जाते हैं जिनमें विश्लेषण करने की कोई क्षमताएँ नहीं होतीं। दुर्भाग्य से विज्ञान केवल एक विषय बनकर रह गया है – एक ऐसे पाठ्यक्रम का हिस्सा जो रोमांचक गहन पूछताछ के बजाय, स्मृति में संचित जानकारी को पेश करने की क्षमता को प्रोत्साहित करता है। विज्ञान के विद्यार्थी से प्रायः मेहनती, परम्परावादी, अविद्रोही और आज्ञाकारी होने की आशा की जाती है। ऐसा बच्चा, जिसे मस्ती पसन्द है, जो दूर के सपने देखता है, जिसके विचार क्रान्तिकारी हैं और जो बेचैन करने वाले प्रश्न पूछता है, उसे निरुत्साहित किया जाता है, और उसे 'विज्ञान के लिए अयोग्य' समझा जाता है।

यदि हम शुरू में उल्लेख किए गए विज्ञापन पर फिर से नज़र डालें तो पाते हैं कि इसमें विज्ञान का निरूपण एक यंत्र–मानव की तरह किया गया है। यहाँ एक और बीमारी दिखाई देती है, जिससे विज्ञान आजकल ग्रस्त है – विज्ञान, तकनीक (टैक्नोलॉजी) का पर्याय बन गया है। विज्ञान के इतिहास में तकनीकी उन्नतियों और आविष्कारों की मील के पत्थरों जैसी शृंखला रही है। दोनों हमेशा एक दूसरे के परिपूरक रहे हैं। लेकिन, हमें यह याद रखने की ज़रूरत है कि वे दो स्वतंत्र तत्व हैं । तकनीक, विज्ञान का ऐसा उत्पाद है जो उसे आगे समझने में सहायक होता है। भारत में इधर लम्बे समय से तकनीकी शिक्षा, शुद्ध विज्ञान की शाखाओं पर भारी पड़ती रही है। इसके परिणामस्वरूप बीएससी की डिग्री की तुलना में इंजीनियरिंग के लिए भारी भीड़ आतुर रहती है। समाज में यह नज़रिया बदला नहीं है। हाल ही में मेरी एक विद्यार्थी ने दिल्ली विश्वविद्यालय में बीएससी ऑनर्स का पाठ्यक्रम छोड़कर, सुदूर उत्तर प्रदेश के किसी अनजान से निजी कॉलेज के एक इंजीनियरिंग कोर्स में दाखिला ले लिया: कारण कि इससे शादी के बाज़ार में उपयुक्त दूल्हा पाने की उसकी सम्भावनाएँ बेहतर हो जाएँगी!

यहाँ लियोनार्दो द विंची का जिक्र करना अटपटा लग सकता है। पर यूरोपीय नवजागरण का यह महान, बहुमुखी प्रतिभा का धनी व्यक्ति इस बात की जबरदस्त मिसाल था कि वैज्ञानिक पद्धति को कैसे रचनात्मक ढंग से जीवन के हर क्षेत्र में, कला और संगीत में भी, लागू किया जा सकता है। यद्यपि, वह अपनी नाटकीय और भावपूर्ण कलाकृतियों के लिए सबसे अधिक जाना जाता है। परन्तु लियोनार्दो ने दर्जनों प्रयोग (सावधानी से सोचे–विचारे हुए) और भविष्योन्मुख आविष्कार किए। वे भी उस समय जब सही ढंग से आधुनिक विज्ञान और आविष्कारों की शुरुआत भी नहीं हुई थी। विज्ञान के प्रति लियोनार्दो का दृष्टिकोण निरीक्षण–आधारित था। वह किसी भी क्रियाकलाप का अत्यधिक विस्तार और बारीकी से वर्णन और चित्रण करके उसे समझने का प्रयास करता था। वह प्रयोगों या सैद्धान्तिक व्याख्याओं पर बहुत जोर नहीं देता था। जैसा कि होता आया है, चूँकि उसने लैटिन और गणित में विधिवत शिक्षा नहीं पाई थी, इसलिए तत्कालीन विद्वानों ने वैज्ञानिक लियोनार्दो को ज़्यादातर नज़र अन्दाज़ कर दिया।

लियोनार्दो की कहानी का जिक्र करने का कारण, उस विभाजन रेखा की ओर ध्यान दिलाना है जो हमारे ज्ञान की खोज के बीच खिंच गई है। ऐसा माना जाने लगा है कि कलाएँ और विज्ञान मिल नहीं सकते, वे एक–दूसरे से सर्वथा अलग हैं। इसके अतिरिक्त स्वयं विज्ञान की शाखाओं को काटकर फिर असंख्य उप–शाखाओं में बाँट दिया गया है, जो हरेक अपने को ऊँचा समझते हुए दूसरे से दूरी बनाए रखती है। इसीलिए आज भारत में वैज्ञानिक की छवि एक गैर–सामाजिक, गैर–रचनात्मक व्यक्ति की बन गई है, जो अपनी प्रयोगशाला की अवास्तविक दुनिया में ही सिमटा रहता है। यह ख्याल ही विद्यार्थियों की भारी संख्या को विज्ञान के क्षेत्र से दूर रखने के लिए काफी है।

अतः विज्ञान की यात्रा जो प्रकृति को समग्र रूप से समझने से शुरू हुई, आज उस स्तर से गिरकर विभिन्न विषयों का अस्वस्थ समूह बनकर ही रह गई है, जिसमें हरेक अपने क्षेत्रीय अहंकार से ग्रस्त दूसरों को उपेक्षा की दृष्टि से देखता है। एक आशा भरी बात यह है कि हमने समस्या का निदान कर लिया है और यह रोग का इलाज करने की दिशा में पहला कदम है। ज्ञान की इस खोज यात्रा में, महान वैज्ञानिक अल्बर्ट आइंस्टाइन के ये शब्द हमारे पथ–प्रदर्शक होना चाहिए: 'अल्प ज्ञान खतरनाक होता है, और बहुत ज़्यादा ज्ञान भी उतना ही खतरनाक होता है। पर मुख्य बात है कभी प्रश्न पूछना बन्द नहीं करना।'

नंदिता नारायणसामी ने अपनी पीएच.डी., बायोकैमिस्ट्री में एम.एस. विश्वविद्यालय, बड़ौदा से 1996 में पूरी की। अभी वे श्री वेंकटेश्वर कॉलेज, नई दिल्ली में सह–प्राध्यापक हैं। उनकी रुचि विज्ञान को अधिक प्रयोगात्मक और सीखने की प्रक्रिया को अधिक विश्लेषणात्मक बनाने में है। उनसे इस पते पर सम्पर्क किया जा सकता है : nandita1993@gmail.com